DSSSB PRT, TGT & PGT
Part(A+B)
SCHOLAR BATCH
हिन्दी
हिन्दी साहित्य (आदिकाल)
Part -2
LIVE
06-06-2024 09:00 AM

बीसलदेव रासो

इस ग्रन्थ की रचना नरपति नाल्ह कवि ने 1155 ई. में की थी। जैसे-

"बारह सौ बहोत्तराहां मंझारि। जेठ बढी नवमी बुधि वारि।
नाल्ह' रसायण आरम्भई । सारदा तूठी ब्रह्मकुमारी।
कासमीरा मुख मण्डनी। यस प्रसागों बीसलदेराइ।

'बीसलदेवरासो' मूलत: गेय काव्य था। अत: इसके रूप में परिवर्तन होता रहा है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने 128 छन्दों की एक प्रति का सम्पादन किया है। यह पाठ 'बीसलदेव रासो' का मूल रूप बताया जाता है। 'बीसलदेवरासो' हिन्दी के आदिकाल की एक श्रेष्ठ काव्य कृति है। इसमें भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरस शैली में प्रयुक्त की गई है। 'बीसलदेव रासो' की भावभूमि प्रेम की निरछल अभिव्यक्ति से सरस है। 'मेघदूत' और 'सन्देशरासक' की सन्देश परम्परा भी

इसमें मिलती है। 'बीसलदेव रासो' की श्रृंगार-परम्परा का आदिकाल में ही अन्त नहीं होता। विद्यापति से होती हुई यही परम्परा 'भक्तिकाल' में प्रेमाख्यानक काव्यों तक पहुँची, कृष्ण भक्तो को भी उसने प्रभावित किया तथा रीतिकाल में जाकर उसका सरस 'शृंगार काव्य' के रूप में चरम विकास हुआ।

जैसे -

असत्रीय जनम कई दीधउं महेस।
अवर जनम घारई घणा रे नरेस।
राणि न सिरजीय धउलीय गाइ।
वणषण्ड काली कोइली।
हाउं बइसती अम्बा नइ चम्पा की डाल।
भषती दास बीजोरड़ी।
इणि दुष झूरइ अवलाजी बाल।

हमीर रासो

'प्राकृत पैंगलम' में इस काव्य के कुछ छन्द मिले थे और उन्हीं के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसके अस्तित्व की कल्पना की थी। उनका अनुमान था कि इसमें हमीर और अलाउद्दीन के युद्धों का वर्णन तथा हमीर की प्रशंसा चित्रित होगी। किन्तु राहुल जी ने उन पद्यों को जज्जल नामक किसी कवि की रचना घोषित किया है। डॉ. 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' का कथन है कि 'हमीर' शब्द अमीर का विकृत रूप है, जो किसी पात्र का नाम न होकर एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। अत: शार्ङ्गधर कृत 'हमीर रसों' का अस्तित्व संकट में पड़ा हुआ है। अभी तक इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है।

परमाल रासो – जगनिक

उत्तर प्रदेश में 'आल्हखण्ड' के नाम से जो काव्य प्रचलित है, वही 'परमाल रासो' के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है। यह रासो लोक गेय काव्य था, अतः इसके मूल की सुरक्षा नहीं हो सकी। इसमें अनेक अंश बाद में जोड़े गए है तथा अनेक अंशों में वर्णन और भाषा सम्बन्धी परिवर्तन किए गए हैं। धीरे-धीरे 'आल्हा' लोकगीत की एक शैली ही बन गयी है। अतः आधुनिक विषयों पर 'आल्हा' लिखे जाने लगे हैं।

प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में मौखिक रूप में उपलब्ध 'आल्हखण्ड' के आधार पर 'परमाल रासो' के साहित्यिक स्वरूप के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। सन् 1865 में चार्ल्स इलियट ने जिस 'आल्हा खण्ड' का प्रकाशन कराया था, वह मौखिक परम्परा पर ही आधारित है। इसी प्रति के आधार पर डॉ. श्यामसुन्दर दास ने 'परमाल रासो' का पाठ निर्धारित किया और उसे नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कराया। इस नए रूप

में उपलब्ध 'परमाल रासो' यद्यपि सर्वथा प्रामाणिक कृति तो नहीं है, तथापि आदिकाल से रचित मूल 'परमाल रासो' के ऐतिहासिक अस्तित्व को समझने में सहायक अवश्य है।

'परमाल रासो' का रचयिता जगनिक नामक कवि माना जाता है, जो महोबा के राजा परमालदेव का आश्रित था। उसने इस काव्य में आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों का वर्णन किया है। इसी आधार पर इसका रचनाकाल तेरहवीं शती का आरम्भ माना जाता है। इसमें वीर भावना का जितना प्रौढ़ रूप मिलता, उतना अन्यत्र दुलर्भ है। युद्धों के अत्यन्त प्रभावशाली वर्णनों की इस काव्य में भरमार है। भावों के अनुसार ही भाषा भी चली है और उसमें एक विशेष शब्द ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गई है। गेयता का गुण इस काव्य के विकास शील लोकगाथा काव्य की श्रेणी में ले जाता है, किन्तु इसकी रचना लोकगाथा के रूप में न होकर शुद्ध काव्य के रूप में ही हुई है।

भाषा की दृष्टि से इस काव्य का मूल्यांकन कर पाना सम्भव नहीं, क्योंकि मूल रूप का कोई भी अंश अब शुद्ध रूप में सुरक्षित नहीं है। उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। छन्द-विधान की दृष्टि से इस काव्य की एक विशेष शैली है, जिसे आल्हा-शैली कहना ही उचित है। इसकी वर्णन शक्ति और प्रभावोत्पादकता को समझाने में निम्नांक्ति पंक्तियाँ कुछ सहायक हो सकती है-

'बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरू तेरह ली जिये सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन की धिक्कार"।।

पृथ्वीराज रासो - चन्दबरदाई

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "(चन्द) हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है।" उन्होंने चन्दबरदाई को दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान का सामन्त और राजकवि माना है। महामहोपाध्याय 'पण्डित हरप्रसाद । शास्त्री' के अनुसार, चन्दबरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था। इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में कई धारणाएँ हैं। शुक्ल जी ने इनका जन्म 1168 ई. माना है तथा लिखा है कि " रासो के अनुसार ये भट्ट जाति के जगात नामक गोत्र के थे। जिस समय चन्द जी महाराज के साथ गए थे तथा अपने पुत्र जल्ल को 'पृथ्वीराज रासो' को सौंप गए थे। इस सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है। "पुस्तक जल्हण हाथ दै, चलि गज्जन नृप काज।" कहा जाता है कि जल्ल ने चन्द के अधूरे महाकाव्य को पूर्ण किया था

'रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्रिय जिमि।
प्रथिराज सुजस कवि चन्द्रकृत, चन्द्रकृत, चन्दनन्द उद्धरिय तिमि ॥

'पृथ्वीराज रासो' के चार संस्करण प्रसिद्ध हैं। सबसे बड़ा संस्करण वह है, जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से हुआ है तथा जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। सभा ने 1585 ई. में लिखित प्रति के आधार पर 'रासों' का सम्पादन कराया था। इस संस्करण में '69' समय (खण्ड) तथा 16306 छन्द है। द्वितीय रूप में उपलब्ध पृथ्वीराज रासो '7000' छन्दों का काव्य माना जाता है। इसका प्रकाशन नहीं हुआ, किन्तु अबोहर एवं बीकानेर में इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई है। तीसरा लघु संस्करण 3500 छन्दों का है, जिसमें केवल 19 समय है। इस संस्करण की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बीकानेर में सुरक्षित हैं। चौथा संस्करण सबसे छोटा है, जिसमें केवल 3000 छन्द हैं। इसी को डॉ. दशरथ शर्मा आदि कुछ विद्वान मूल रासो मानते हैं।

- विद्वानों ने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति निम्न ढंग से बताई है

विद्वान/प्रस्तोता	मूल शब्द
गार्सा द तासी	राजसूय
हर प्रसाद शास्त्री	राजयश
नरोत्तम स्वामी	रासक
कविराज श्यामलदास	रहस्य
काशी प्रसाद जायसवाल	रहस्य
आचार्य राम चन्द्र शुक्ल	रसायण-रास या रासो
नन्द दुलारे वाजपेयी	रास
हजारी प्रसाद द्विवेदी	रासक (उपरूपक)
रामस्वरूप चतुर्वेदी	राउस या रस
दशरथ शर्मा	रासक

माता प्रसाद गुप्त गणपति चन्द्र गुप्त	रासक रासक-रास-रासा-श्रसु-रासो

अप्रमाणिकता के लिए तर्क- जो लोग 'रासो' को अप्रामाणिक रचना मानते हैं उनके तर्क निम्नलिखित हैं-

- 'रासो' में उल्लिखित घटनाएँ और नाम इतिहास से मेल नहीं रखते इसमें परमार, चालुक्य और 'चौहान, क्षत्रियों को अग्निवंशी माना गया है, जबकि वे सूर्यवंशी प्रामाणित हुए है

- पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना, संयोगिता स्वयंवर आदि घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खाती हैं।
- अनंगपाल, पृथ्वीराज तथा बीसलदेव के राज्यों के सन्दर्भ भी अशुद्ध हैं।
- पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूरी था, जो 'रासो' में कमला बताया गया है।
- पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह मेवाड़ के राणा समर सिंह के साथ बताया गया है, जो अशुद्ध है।
- पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीमसिंह का वध भी इतिहास सम्मत नहीं है।
- 'रासो' में पृथ्वी राज के चौदह विवाहों का वर्णन हैं, जो इतिहास से मेल नहीं खाता है।
- पृथ्वीराज द्वारा मुहम्मद गौरी की मृत्यु की सूचना भी इतिहास सम्मत नहीं है।
- पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी इतिहास सम्मत नहीं है।
- 'रासो' में दी गई तिथियाँ अशुद्ध हैं। सभी तिथियों में इतिहास की तिथियों से प्राय: 90-100 वर्षों का अन्तर है।

जयचन्द प्रकाश और जयमंयक जसचंद्रिका

- मधुकर भट्ट

इन कृतियों का 'राठौड़ री ख्यात' में उल्लेख मिलता हैं, किन्तु अभी तक ये उपलब्ध नहीं हुई है। कहा जाता है कि प्रथम कृति की रचना 'केदार' नामक कवि ने की थी। यह एक महाकाव्य था, जिसमें महाराज जयचन्द्र के प्रताप और पराक्रम का वर्णन था।

- 'जयमंयक-जसचंद्रिका की रचना मधुकर कवि ने 1186 ई. में की थी। इस ग्रन्थ का उल्लेख 'राठौड री ख्यात' में उपलब्ध है।

गद्य साहित्य

आदिकाल में काव्य-रचना के साथ-साथ गद्य रचना की दिशा में भी कुछ स्फुट प्रयास लक्षित होते हैं। 'राउरवेल' (चम्पू), 'उक्ति- व्यक्ति-प्रकरण' और वर्णरत्नाकर इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

राउलवेल

यह एक 'शिलांकित' कृति है, जिसका पाठ बम्बई के 'प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय' से उपलब्ध कर प्रकाशित कराया गया है। विद्वानों ने इसका रचना काल 'दसवीं' शताब्दी माना है। यह 'गद्य-पद्यमिश्रित चम्पू' काव्य काव्य है। इसकी रचना 'राउल' नायिका के नख-शिख' वर्णन के प्रसंग में हुई है। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। कवि रोड़ा ने इस गद्य का सृजन करते हुए उपमा, उत्प्रेक्षा आदि

अलंकारो का प्रयोग करके उसके रूख वर्णन को प्रभावशाली बना दिया है। कवि ने गद्य में भी आलंकारिक भाषा का सफलताा से प्रयोग किया है।

जैसे-

'एहु गौड़ तुहुं एकु को पनु अउर वर को.... तइं
सहुं या बालइ। जणुणु मालवीय देसुहि आवंतु आम्बदेउ
जाउं (जानु) आपणा हथिआरहु मूलर। इहां अम्हारइ दुभगी सौंप हरिउ भई"

आदिकाल की उपलब्धियाँ

भाषा रूप और सम्प्रेषण क्षमता

आदिकाल में हिन्दी भाषा साहित्यिक अपभ्रंश के साथ-साथ चलती हुई क्रमशः जनभाषा के रूप में साहित्य रचना का माध्यम बनी। फलतः अपभ्रंश में साहित्य लिखने वाले कवि हिन्दी में भी कविता किया करते थे। आदिकालीन साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी की यह बहुत बड़ी राहत है, जो उसकी सम्प्रेषण क्षमता की सूचना देती है।